इकाई 18 चतुर्विध समापत्ति (समाधिपाद, सूत्र 41–47)

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 समापत्ति का लक्षण एवं स्वरूप

18.3 सारांश

18.4 शब्दावली

18.5 बोध/अभ्यास प्रश्न

18.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

18.0 उद्देश्य

- पातञ्जल योगसूत्र के अनुसार चतुर्विध समापत्ति के स्वरूप को जान सकेंगे ।
- विभिन्न शास्त्रों के अनुसार समापत्ति का स्वरूप समझ सकेंगे।
- समापत्ति के व्युत्पत्ति परक एवं निष्पत्ति के अर्थ को समझ सकेंगे।
- समापत्ति के प्रयोजन एवं व्यवहारिक उपादेयता को समझ सकेंगे ।

18.1 प्रस्तावना

चराचर लोक में सुख एवं दुःख की अनुभूति प्रत्येक जीव को होती है। कर्माशय की तीव्र दुःखानुभूति होती है तो किसी को मन्द दुःख की अनुभूति होती है। अनुकूल वेदनीयं सुखम्। प्रतिकूल वेदनीयं दुखम्। यह दुःख तीन प्रकार से है– आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक के भेद से। आध्यात्मिक दुःख शारीरिक और मानसिक के भेद से दो प्रकार का है। शरीर की संरचना वात, पित्त और कफ की अवस्था विशेष होने पर ही होती है, यदि जब वात पित्त और कफ इन तीनों में से किसी एक की भी न्यूनता अथवा अधिकता हो जाये तब शरीर की स्वस्थता कम अथवा समाप्त होने की सम्भावना अत्यधिक होने लगेगी। अतः वात, पित्त और कफ के विषमता से होने वाले दुःख को शारीरिक दुःख कहते हैं। वस्तुतः शरीर के निमित्त समुत्पन्न होने वाले दुःख का नाम शारीरिक दुःख है। मानसिक दुःख काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या, विषाद आदि विषय के दर्शन के द्वारा होते हैं। मानसिक दुःख का प्रसिद्ध उदाहरण है कि जब किसी न चाहने वाले व्यक्ति यात्रा के समय सम्मुख विराजमान हो जाये, वह व्यक्ति किसी भी प्रकार से वाणी आदि के द्वारा उसको कष्ट नहीं पहुंचाता है किन्तु फिर भी उसको देखकर होने वाला कष्ट मानसिक दुःख है। मानसिक दुःख प्रियवियोग और अप्रियसंयोग से समुत्पन्न होता है। यह दोनों प्रकार के शारीरिक और मानसिक दुःख आन्तरिक उपाय से साध्य होने से आध्यात्मिक दुख है।

बाह्य उपाय से समुत्पन्न होने वाला दुख आधिभौतिक और आधिदैविक के भेद से दो प्रकार का है। आधिभौतिक दुःख के अन्तर्गत मनुष्य, पशु, मृग, पक्षी, सरीसृप और स्थावर के द्वारा समुत्पन्न होता है। आधिदैविक दुःख यक्ष, राक्षस और विनायक आदि देवों से समुत्पन्न होने वाला दुख भी आधिदैविक दुःख के नाम से व्यवहृत होता है। इस प्रकार से तीनों दुःखों के द्वारा अन्तःकरण में विद्यमान चेतना शक्ति के प्रतिकूलतया

वेदनीय होने से उससे होने वाला अभिघात ही दुख है। इन तीनों प्रकार के दुःखों के निवृत्ति के उपाय योगशास्त्र में उपवर्णित किया गया है। इन्हीं दुःखों की निवृत्ति व्यक्त–अव्यक्त और ज्ञ के विशेष ज्ञान से होती है। समाधि के द्वारा इन दुःखों की निवृत्ति सम्भव है। यह समाधि सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात के भेद से दो प्रकार के विद्यमान है।

संसार में प्रत्येक मनुष्य अनन्त ज्ञान एवं शक्ति से युक्त है। आलम्बन के उपस्थित होने पर उसके ज्ञान या शक्ति का दर्शन होता है । प्रत्येक मनुष्य में भिन्न – भिन्न प्रकार की शक्ति निहित है। प्रत्येक मनुष्य की विचारशक्ति अलग – अलग है किन्तु प्रत्येक मनुष्य के जीवन का एकमात्र लक्ष्य है परम पुरुषार्थ की प्राप्ति, मोक्ष की प्राप्ति। इस परम पुरुषार्थ की प्राप्ति हेतु शास्त्रों में अनेक प्रकार के साधन बताये गये हैं। इन्हीं साधनों में योगविद्या अत्यन्त प्रसिद्ध है। योग चित्तवृत्तियों के निरोध की बात करता है चित्तवृत्तियों के निरोध के अनन्तर ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। मोक्ष से पूर्व की स्थिति समाधि होती है। समाधि भी मुख्यरूप से दो प्रकार की होती है – सम्प्रज्ञात समाधि और असम्प्रज्ञात समाधि। सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में साधक का चित्त सभी प्रकार के सांसारिक विषयों में दोष निकालकर उनमें वैराग्य करने लगता है। सांसारिक विषयों में वैराग्य उत्पन्न होने पर साधक का चित्त एकाग्र हो जाता है यह अवस्था सम्प्रज्ञात समाधि कही जाती है। इस समाधि की भी चार अवस्थायें होती हैं – वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता। इन सभी समाधियों के आधार पर ही समापत्ति भी मुख्यरूप से चार प्रकार की हो जाती है – सवितर्क समापत्ति, निर्वितर्क समापत्ति, सविचार समापत्ति एवं निर्विचार समापत्ति। इन्हीं चतुर्विध समापत्तियों का विवेचन इस इकाई में किया जायेगा।

18.2 समापत्ति का अर्थ, लक्षण एवं स्वरूप

(सम् + आ + पद् गतौ + क्तिन्) सम् और आ उपसर्ग पूर्वक पद, गतौ धातु में क्तिन् प्रत्यय लगने पर समापत्ति शब्द बना है जिसका अर्थ है – सम्–अच्छी प्रकार से आ = सब ओर से पत्ति – प्राप्ति होना अर्थ है ।

जिस योग साधक की रजस, तमस वृत्तियाँ क्षीण हो चुकी हैं, ऐसे स्वच्छ, निर्मल, निर्दोष, मणि सदृश चित्त का ग्रहीता, ग्रहण और ग्राह्य के स्वरूप में स्थिर होकर उसी रूप आकार वाला प्रतीत होना समापत्ति कहलाती है। समापत्ति और सम्प्रज्ञात समाधि को पर्यायवाची समझना चाहिए। समापत्ति का लक्षण एवं स्वरूप की चर्चा करते हुए महर्षि पंतजलि कहते हैं –

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः।
(योगसूत्र 1/41)

अर्थात् ध्यान आदि साधनाओं का अभ्यास करते – करते जब साधक का चित्त स्वच्छ स्फटीक मणि की भाँति अति निर्मल हो जाता है तथा जब उसकी ध्येय विषय के अतिरिक्त बाह्य वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं उस समय साधक ग्रहीता (पुरुष) ग्रहण (अन्तःकरण इन्द्रियाँ) तथा ग्राह्य (पंचभूत आदि इन्द्रिय विषय), इनमें जिस किसी पर भी ध्येय का बनाकर उसमें अपने चित्त को लगाता है तो वह चित्त उस ध्येय वस्तु में स्थित हो तदाकार हो जाती है – (तदस्थतदञ्जनता)। इसी को सम्प्रज्ञात समाधि (समापत्ति) कहते हैं । समाधि की इस अवस्था में साधक को ध्येय वस्तु के स्वरूप का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है उसके विषय में किसी प्रकार का संशय या भ्रम नहीं रहता।

जैसे निर्मल स्फटिक मणि के समीपवर्ति जपा कुसुम (लाल फूल विशेष) आदि के रूप के सदृश मणि की भी प्रतीति होने लगती है। उसी प्रकार से अभ्यास और वैराग्य के द्वारा अथवा अन्य उपायों द्वारा राजसिक और तामसिक वृत्तियों के क्षीण होने के अनन्तर स्वच्छभाव को प्राप्त चित्त का ग्रहीता, ग्रहण और ग्राह्य पदार्थों में एकाग्रता होने के अनन्तर अथवा पौनःपुन्य अभ्यास के द्वारा तत्स्वरूपता को प्राप्त करना समापत्ति और परिणामता है। सूत्र में प्रयुक्त शब्द क्रम ग्रहीता, ग्रहण और ग्राह्य को अर्थक्रम के अनुरोध से ग्राह्य, ग्रहण और ग्रहीता इस क्रम से अन्वय करना चाहिये। समापत्ति अवस्था में ध्यान का विषय क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म की ओर होता है स्थूल पदार्थों के साक्षात्कार एवं उनके स्वरूप को जानने के बाद क्रमश विषयों का साक्षात्कार करने, उनके स्वरूप को जानने में समर्थ होता जाता है। सर्वप्रथम स्थूल ग्राह्य पदार्थों में घट पटादि में प्रेरित करने वाला चित्त तदुपरक्त तत्समानाकार परिणत होकर उसी पर एकाग्र होता है। परम महत् भूतों हिरण्यमय कोश पर्यन्त ग्राह्य पदार्थों में प्रेर्यमाण चित्त तदुपरक्त तत्समानाकार परिणत होकर परम महत् में एकाग्र होता है। सूक्ष्म पदार्थों में द्यणुक और परमाणु में ग्राह्यविषयों में प्रेरित करने वाला चित्त तदाकार होकर सूक्ष्म पदार्थों के एकाग्र हो जाता है। इन्ही स्थूल सूक्ष्म ध्येय विषयों की भिन्नता के आधार पर समापत्ति अवस्था चार प्रकार की बताई गई है।

समापत्ति के प्रकार

'वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात्सम्प्रज्ञातः।' (योगसूत्र 1 / 17)

१. सवितर्क समापत्ति / वितर्कानुगत

२. निर्वितर्क समापत्ति / विचारानुगत

३. सविचार समापत्ति / आनंदानुगत

४. निर्विचार समापत्ति / अस्मितनुगत

वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि दो प्रकार से है, सवितर्क और निर्वितर्क। विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि सविचार और निर्विचार के भेद से दो प्रकार का है। आनन्दानुगत और अस्मितानुगत के अवान्तर भेद नहीं है।

१. सवितर्क समापत्ति / वितर्कानुगत का वह रूप है जिसमें ध्यान का आलम्बन या विचार अर्थात् ध्येय विषय स्थूल पदार्थ होते हैं, जैसे सूर्य,पर्वत, नदी, मूर्ति आदि ।

व्यास भाष्य के अनुसार – **वितर्कः चित्तस्याऽऽलम्बने स्थूल आ भोगः ।**

इस समाधि में योगी विश्व ब्रहमाण्ड के स्थूल पदार्थो– सौरमण्डल, तारामण्डल, ग्रह, उपग्रह आदि दूरस्थ पिण्डों के स्वरूप को जानने में समर्थ हो जाता है। शब्द अर्थ और ज्ञान के विकल्प की दृष्टि से इस समाधि के दो प्रकार हैं। 1.सवितर्क समाधि और 2. निर्वितर्क समाधि ।

'तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः।' (योगसूत्र 1 / 42)

सवितर्क समापत्ति में जब तक शब्द अर्थ और ज्ञान का विकल्प वर्तमान रहता है अर्थात् योगी के चित्त में ध्येय स्थूल विषय भी अनुभव रहता है, तब तक वह सवितर्क समापत्ति कहलाती है ।

अर्थात् समापत्ति और सम्प्रज्ञात समाधि को पर्यायवाची समझना चाहिये । ध्येयविषयक प्रगाढ़तम एकाग्रावस्था को समाधि कहते हैं। उस अवस्था में हमें ध्येय वस्तुस्वरूप विषयक विशेष बोध होता है। सम्प्रज्ञात शब्द से भी यही ध्वनित होता है। सम्प्रज्ञात

शब्द का अर्थ है– ध्येयविषयः सम्यक् प्रकारेण ज्ञायते यत्र स सम्प्रज्ञातः अर्थात् समाधि की जिस अवस्था में ध्येय के स्वरूप को सम्यक्तया जाना जाय, वह अवस्था सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। सुबोधता हेतु सम्प्रज्ञात समाधि को भी निम्न – उच्च अवस्थाओं के आधार पर चार भागों में विभाजित किया गया है। इस सूत्र में सम्प्रज्ञात समाधि की निम्नतम अवस्था का वर्णन किया गया है और उसे सवितर्का समापत्ति नाम दिया गया है। इस अवस्था में ध्येयपदार्थ तदर्थ प्रयुज्यमान शब्द और तदविषयक ज्ञान से मिश्रित भासता है। यह हम सभी जानते हैं कि शब्द, अर्थ तथा ज्ञान ये तीनों पृथक् – पृथक् सत्ता वाले हैं।

1. शब्द – जो जिह्वा के द्वारा उच्चारित होता है तथा कानों के द्वारा ग्रहण किया जाता है वह शब्द कहलाता है । यथा – गाय यह एक शब्द है।

2. अर्थ – वह पदार्थ विशेष, जिसका बोध कराने के लिए शब्द का प्रयोग किया जाता है, अर्थ कहलाता है, यथा – चार पैर, दो सींग आदि से युक्त जो पशु गोशाला में देखा जाता है तथा जिसके लिए गाय शब्द का प्रयोग होता है ।

3. ज्ञान – शब्द को सुनने के बाद मन में जागृत होने वाला अर्थस्वरूपविषयक आभास ज्ञान कहलाता है यथा – गाय शब्द को सुनने के बाद मन में जागृत होने वाला तदर्थस्वरूपविषयक आभास – अनुभूति । ये तीनों सर्वथा पृथक् – पृथक् सत्ता वाले हैं, लेकिन निरन्तर अभ्यास के कारण मिले–जुले प्रतीत होते हैं। सवितर्का समापत्ति की अवस्था में भी तीनों की मिली–जुली प्रतीति होती है। उदाहरण के लिए गाय को विषय बनाकर चित्त को एकाग्र करने पर चतुष्पदी पशु की प्रतीति जब गाय यह शब्द तथा तद्विषयक ज्ञान से मिश्रित अवस्था में हो तो वह सवितर्का समापत्ति कहलाती है। वस्तुतः यह समाधि की सबसे निम्नतम अवस्था है, लेकिन शिखर पर भी सीढ़ी–दर–सीढ़ी ही पहुँचा जाता है इसलिये यहाँ तक पहुँच जाना भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है ।

सभी जगह लौकिक और अलौकिक उभय विध पदार्थ के व्यवहार में सबसे पहले संकेत ज्ञान वाले पुरूष घट अर्थ का अवलम्बन कर के "घट" इत्याकारक वाचक शब्द का प्रयोग करता है जिससे घटत्व प्रकारक और घट विशेष्यक शाब्दबोध की उत्पत्ति होती है। इस शाब्दबोध के अनन्तर कम्बुग्रीवा वाले पृथुदर जलहरण योग्य घट पदार्थ विशेष का बोध मध्यस्थ को होता है। इस प्रकार घट यह शब्द, घटत्व प्रकारक और घट विशेष्यक शाब्दबोध और कम्बुग्रीवा वाले पृथुदर जलहरण योग्य घट वस्तु इन तीनों का परस्पर में अविनाभाव सम्बन्ध है। अविनाभाव का अर्थ व्याप्ति से नहीं होकर संकेत से है। यह संकेत इतरेतराध्यासात्मक है। यह तीनों पदार्थ वस्तुतः स्वतन्त्र और भिन्न–भिन्न स्वस्वधर्म के रूप में विद्यमान है, जैसे शब्दत्व तारत्व और मन्दत्वादि शब्दधर्म भिन्न–भिन्न होकर विद्यमान है। प्रकाशत्व, ज्ञानत्वादि शाब्दबोधधर्म भी भिन्न–भिन्न ही है। भिन्न–भिन्न संकीर्णतया पदार्थों का अभेद रूप से अवधारण करना संकीर्ण सवितर्का समापत्ति समाधि है। कदाचित् घट इस शब्द के साथ शाब्दबोध का अभेदतया अवधारण होता है और कहीं घट इस पदार्थ के साथ शब्द और शाब्दबोध का अभेदतया अवधारण होता है। कहीं कहीं शब्द और शाब्दबोध इन दोनों का ही अभेदतया अवधारण होता है। सविचारा सम्प्रज्ञात समापत्ति स्थूलविषयों का ही होता है। स्थूल अर्थ वाचक शब्दों के प्रयोग के द्वारा प्रवृत्त होता है। शब्द भी स्थूल होते हैं, शाब्दबोधात्मक और अनुमानात्मक वृत्ति भी स्थूल होते हैं।

२. निर्वितर्क समापत्ति / विचारानुगत

जब इनका विकल्प नहीं रहता तो समाधि की वह अवस्था निर्वितर्क समापत्ति कहलाती है।

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का। (योगसूत्र 1/43)

शब्द – संकेत जन्य स्मृति के पूरी तरह से निवृत्त हो जाने पर अपने ग्रहणरूप से शून्य हुई सी केवल अर्थमात्र का बोध कराने वाली चित्त की वृत्त्यात्मक स्थिति निर्वितर्का समापत्ति कहलाती है। अर्थात् हम सभी को होने वाला किसी भी पदार्थ का बोध, पदार्थ विषयक शब्द, पदार्थ के विषय में सुने हुए तथ्यों तथा अन्य बहुत सारे आनुमानिक तथ्यों से सम्मिश्रित रहता है। समापत्ति की पूर्वावस्थाओं में भी ऐसा ही होता रहता है। इस सूत्र में बताया जा रहा है कि समापत्ति की जिस अवस्था में अर्थबोध के साथ संयुक्त यह शब्द आदि जन्य स्मृति पूरी तरह निवृत्त हो जाये और केवल अर्थमात्र का बोध होने लगे, वह अवस्था योगदर्शन की भाषा में निर्वितर्का समापत्ति कहलाती है । सवितर्क समाधि को सविकल्पक समाधि तथा निर्वितर्क समाधि को निर्विकल्पक समाधि भी कहते है क्योंकि इसमें सभी प्रकार के विकल्पों का अभाव हो जाता है। सूत्र में प्राप्त अर्थ पद का तात्पर्य 'लक्ष्य' है, अर्थ शब्द शाब्दबोध और अनुमान इन दोनों में से किसी एक का अर्थ बोध कराते हैं, यह जहां भासित होता है वह लक्ष्य मात्र का आलम्बन करने वाला है। शुन्य विकल्प से रहित होकर जहां स्वरूप शून्य होकर विकल्प से अभिन्न हो जाता है। इव का अर्थ सादृश्य है। जैसे सानन्द और सास्मिता सम्प्रज्ञात में एक मात्र पदार्थ का आलम्बन करे वैसे ही यहां भी भेद स्थूल वस्तुओं के कारण ही है। जहां घटादि शब्दोच्चारण के अनन्तर शाब्दबोध और अर्थ की उपस्थिति होती है, इस अवस्था में कारण संकेत के द्वारा तीनों का बोध होने के अनन्तर संकेत का परित्याग करके केवल स्थूलशब्द के ऊपर चित्त का धारण करना केवल शब्द विषयीणी होने से संकेत का भी परित्याग करती है, उसके अधीन बोधित होने वाले वस्तु का भी वियोग होता है। यह संकेत से युक्त संकीर्णता रहित होने के कारण परिशुद्धा समापत्ति है।

३. सविचार समापत्ति / आनंदानुगत

४. निर्विचार समापत्ति / अस्मितनुगत

एतयैव सविचारा निर्विचारा चे सूक्ष्मविषया व्याख्याता। (योग सूत्र 1/44)

सविचार समापत्ति – इसमें ध्यान का आधार सूक्ष्म विषय जैसे तन्मात्रा आदि होते हैं यह भी सविचार और निर्विचार दो प्रकार का होता है। जब तक इस समाधि में शब्द अर्थ और ज्ञान का विकल्प रहता है तब तक वह सविचार समाधि तथा जब इनका विकल्प नहीं रहता, तब वही निर्विचार समाधि कही जाती हैं। सविचार और निर्विचार समापत्ति भी सबीज समाधि के अंतर्गत आती है।

सवितर्क और निर्वितर्क रूप से स्थूलविषयक समापत्ति और सूक्ष्मविषय भी सविचार और निर्विचार रूपा लक्ष्यपदार्था के अभेद अध्यासाय और अनाध्यास साम्यता होती है। परमाणु विषयिणी सविचार का उदाहरण है– 'परमाणु यह सूक्ष्म शब्द है, इस शब्द के द्वारा परमाणु विषयक शाब्दबोध है और विषय भी परमाणु ही है। यह तीनों ही योगियों के द्वारा योगाभ्यास धर्म सामर्थ्य द्वारा प्रत्यक्ष होता है। तीनों तत्त्वों के स्वभावतः परस्पर भिन्न–भिन्न होने पर भी परमाणु सूक्ष्म शब्द के द्वारा संकेत है, यह संकीर्ण है। इसलिये इतरेतर अध्यासात्मक प्रभाव के द्वारा तीनों के भी वास्तविक रूप से भिन्न– भिन्न का अभेद का अध्यास के द्वार जो ग्रहण होता है वह संकीर्ण सविचार समापत्ति है।

विचारानुगत सम्प्रज्ञात का सूक्ष्मपदार्थ ही विषय होते हैं, सूक्ष्म पदार्थ से तात्पर्य लिङ्ग अर्थात प्रकृति पर्यन्त होता है।[1] जैसे स्थूल त्रसरेणु के अपेक्षा द्यणुक सूक्ष्म है, द्यणुक के भी अपेक्षया परमाणु सूक्ष्म है और परमाणु के अपेक्षया तन्मात्रायें और इन्द्रियां सूक्ष्म है, इन्द्रिय और तन्मात्राओं के अपेक्षा मन सूक्ष्म है, मन के अपेक्षा अहंकार सूक्ष्म है, अहंकार के अपेक्षा अहंकार के कारणभूत महत् अर्थात् बुद्धि तत्त्व सूक्ष्म है। महत तत्त्व का कारण मूलप्रकृति है, यह मूल प्रकृति महत् तत्त्व के अपेक्षा सूक्ष्म है। इस प्रकार से अणुकादि प्रभृति से प्रकृति पर्यन्त सूक्ष्म विषय है। यद्यपि प्रकृति के अपेक्षा पुरूष सूक्ष्म है, पुरूष के अपेक्षा परमेश्वर सूक्ष्मतम् है फिर भी उसकी गणना नहीं किया है इसलिये परम सूक्ष्मता की पराकाष्ठा मूल प्रकृति ही है। वस्तुतः आत्मस्वरूप का भी योगियों को धारणादि के द्वारा ग्राह्य होता है, पुरूष सूक्ष्म स्वरूप हो सकता है। सूक्ष्मस्वरूप होने से यह अदृश्य रहता है। इसलिये परम–महान– आत्मा ऐसा कहने पर कोई विरोध नहीं होगा। इसी प्रकार से परमेश्वर भी योगि को स्वात्मदर्शन के अनन्तर अन्तर्यामी होने के कारण दिव्यस्वरूप को देखने में समर्थ होता है इसलिये पुरूष के अपेक्षा परमेश्वर सूक्ष्मतर है। सूक्ष्मतरता कहने का तात्पर्य यह है कि स्वात्मा स्वरूप के अपेक्षा अदृश्य स्वरूप होने से अन्तर्यामी है जिससे स्वसिद्धान्त के विरोध होने की आपत्ति प्रसक्त नहीं होगी। स्थूल और सूक्ष्म विषयों का जो स्वरूप होगा वही स्वाकार के द्वार चित्त को परिणत करता है, विषयोपरक्त चित्त वहां स्थिरीभूत होता है। स्थूल सूक्ष्म के आलम्बन करने पर चित्त के जितने भी छब्बीस विषय पदार्थ है उनके आकार में परिणति चित्त में हो जाये। इसको अन्य प्रकार से भी समझ सकते है कि जैसे पृथिवी के परमाणु अनेक धर्मों से व्याप्त होकर रहते है और उसमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये सब परमाणु के धर्म रहते हैं। पृथिवी परमाणु को शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध तन्मात्राओं के द्वारा उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार से घटादि भी परमाणुओं में रहने वाले परमाणु धर्म परमाणुओं के तादात्म्य होने से परमाणुओं से समुत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार से संख्या, परिमाण, संयोग और परत्वादि भी अन्य धर्म को समझ लेना चाहिये। परमाणु के किसी भी घटादि प्रदेश में स्थित होने से प्रदेशावच्छिन्नत्व रूप परमाणुधर्म है। उसी प्रकार से किसी न किसी वर्तमान काल में विद्यमान होने से वर्तमान तत्व अवच्छिन्न भी परमाणु धर्म है। इस प्रकार से विविध धर्म परमाणु से भिन्न परमाणु में रहते है। इन सबका अभिन्नरूप से ग्रहण अर्थात इतरेतर अध्यास होना ही संकीर्ण सविचार समापत्ति है। इसी प्रकार से जल परमाणु आदि का समझना चाहिये।

'ता एव सबीजः समाधिः।' (योगसूत्र 1/46)

निर्विचार समपत्ति निर्विकल्प होने पर भी निर्बीज नहीं हैं, यह सबीज समाधि ही है क्योंकि इनमें बीज रूप से किसी न किसी ध्येय पदार्थ का अस्तित्व ध्येय वृत्ति के रूप में रहता है। इन समाधियों में चित्त में ध्येय वृत्ति मौजूद रहती है इसलिए चित्त की सम्पूर्ण वृत्तियों का निरोध अभी नहीं हुआ होता है। जिस कारण सम्प्रज्ञात समाधि या सबीज समाधि से पुरुष को कैवल्य की प्राप्ति अभी नहीं हो पाती। योगी साधक का चित्त जैसे–जैसे निर्मल होता जाता है चित के अंदर की वृत्तियाँ क्षीण होती जाती हैं वैसे–वैसे वह समाधि की और अधिक उच्च अवस्था मे प्रवेश करता है।

सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार ये चारों समाधि सबीज सम्प्रज्ञात समाधि है। स्थूल–सूक्ष्मविषयों में धारणा के द्वारा चित्त के स्थिर होने पर प्रमाणादि वृत्ति के अनुद्भव होने से अविद्या आदि क्लेश प्रादुर्भूत नहीं होते हैं किन्तु स्वकारण चित्त के वृत्ति में तिरोहित हो जाते है इसलिये बीजभाव में विद्यमान होने से इस समाधि को

[1] सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम्। योगसूत्र १/४५

सबीज समाधि कहते हैं। सबीज समाधि सम्प्रज्ञात समाधि ही होती है। अथवा आत्मा और परमात्मा का परित्याग करके अन्य सुख, दुःख और मोहात्मक स्थूल और सूक्ष्म विषयों में चित्त को धारण करने से सुख, दुःख और मोहात्मक संस्कार उत्पन्न होते हैं। उन संस्कारों से क्लेशादि बीज भाव में पुष्ट रहते हैं न कि अङ्कुर रुप में परिणत होकर दुःखादि को उत्पन्न करते है। समाधि धर्म उसका प्रतिबन्ध होता है, इसलिये ये बीज भाव में विद्यमान रहते हैं। किन्तु जो बीजभाव में अवतिष्ठ रहते है अतः इसको सर्वबीजसमाधि कहते हैं।

इस प्रकार से यह सम्प्रज्ञात योग छह प्रकार से विभक्त होता है। सवितर्क, निर्वितक, सविचार, निर्विचार, सानन्द और सास्मिता के भेद से ही यह छह प्रकार का है। जब स्थूल विषयों को विषय बनाया जाये तब सवितर्क और निर्वितर्क सम्प्रज्ञात समाधि होती है। ग्रहण– सूक्ष्म इन्द्रियादिविषय समाधि सविचार और निर्विचार होता है। अहंकार गत आनन्दमात्र को विषय करने वाले सानन्द समाधि है। बुद्धि और चेतन स्वरूप इन दोनों के एकात्म्य मात्र विषयक सास्मिता है। इनमें से चारों ही सबीज है अन्य दो सबीज नहीं है। यद्यपि सानन्द और सास्मिता काल में भी क्लेशादि के बीजरूपता की सम्भावना विद्यमान है। किन्तु निर्विचारपर्यन्त जो क्लेशादि है वे बीजभाव में परिणत रहते हैं। निर्विचार के होने से ही तत्त्वज्ञान की उत्पत्ति होती है, तत्त्वज्ञानाग्नि के द्वारा सानन्द नामक समाधि के समापत्ति काल में क्लेशादि के बीजभाव भी दग्ध होने लगते है इसी प्रकार से सास्मिता काल में भी दाह प्रवाह अविच्छिन्न रहता है, तदनन्तर विवेकख्याति समुत्पन्न होती है। विवेक ख्याति के होने से चित्तवृत्ति के बीजभाव को भी दग्ध किया जाता है जिससे असम्प्रज्ञात समाधि समुत्पन्न होती है। इसलिये विरोधि के द्वारा ज्ञानाग्नि के द्वारा समाप्त करते समय में क्लेशबीज के होने पर भी इसकी सबीजता युक्ति युक्त नहीं है, इसलिये उन चारों को सबीज स्वीकार किया गया है।

निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः। (योगसूत्र 1/47)

निर्विचार – समापत्ति में वैशारद्य – अवस्था उत्पन्न हो जाने पर, योगी को अध्यात्मप्रसाद प्राप्त होता है, अर्थात् – निर्विचार–समापत्ति की सिद्धि होने पर अध्यात्मप्रसाद प्राप्त होता है। जिसके कारण सम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि प्राप्त होती है । उपरोक्त सवितर्का आदि समापत्तियों में निर्विचारा समापत्ति सबसे उच्चतम अवस्था है। इस निर्विचारा समापत्ति की भी निम्न, उच्च व उच्चतम अवस्थाएँ हैं। अध्यात्म–प्रसाद एक प्रकार की विवेक की उच्चतम उपलब्धि है, जो कि निर्विचारा समापत्ति की उच्चतम अवस्था में प्राप्त होती है। सत्त्वगुण का परमस्वच्छ व अति स्थिर प्रवाह वैशारद्य कहा जाता है। यह निर्विचार समाधि की उच्चतम अवस्था में घटित होता है। निर्विचार – समापत्ति में इस वैशारद्य – अवस्था के उत्पन्न हो जाने पर, योगी को मूल प्रकृति पर्यन्त समस्त पदार्थों का युगपत् व यथार्थ – बोध कराने वाला एक प्रकार का प्रज्ञा – आलोक प्राप्त होता है। इस प्रज्ञा – आलोक को ही यहाँ अध्यात्म–प्रसाद कहा गया है। शाब्दिक दृष्टि से अध्यात्म–प्रसाद शब्द का अर्थ होगा– बुद्धि की परम निर्मल अवस्था । प्रज्ञा – आलोक के लिए प्रज्ञा–प्रसाद शब्द भी शास्त्रों में देखने को मिलता है। शाब्दिक दृष्टि से प्रज्ञा प्रसाद शब्द का अर्थ होगा – बुद्धि का उच्चतम शिखर। सवितर्का आदि समापत्तियों में निर्विचारा समापत्ति सबसे उच्चतम अवस्था है। इस निर्विचारा समापत्ति की भी निम्न, उच्च व उच्चतम अवस्थाएँ हैं। अध्यात्म–प्रसाद एक प्रकार की विवेक की उच्चतम उपलब्धि है, जो कि निर्विचारा समापत्ति की उच्चतम अवस्था में प्राप्त होती है। सत्त्वगुण का परमस्वच्छ व अति स्थिर प्रवाह वैशारद्य कहा जाता है। यह निर्विचार समाधि की उच्चतम अवस्था में घटित

होता है। निर्विचार – समापत्ति में इस वैशारद्य– अवस्था के उत्पन्न हो जाने पर, योगी को मूल प्रकृति पर्यन्त समस्त पदार्थों का युगपत् व यथार्थ – बोध कराने वाला एक प्रकार का प्रज्ञा–आलोक प्राप्त होता है। इस प्रज्ञा – आलोक को ही यहाँ अध्यात्म–प्रसाद कहा गया है।

निर्विचार समापत्ति के वैशारद्य का नाम रज और तम के समुत्पादक पाप आदि लक्षण मलरहित का प्रकाश स्वभाव का बुद्धि सत्त्व के स्वच्छ ध्येयगत अशेष विशेष प्रतिबिम्ब के उद्ग्राही स्थिति के एकाग्रता की प्रवाह रहता है। उसमें शुद्ध तत्त्वज्ञान का प्रादुर्भाव होता है जिससे प्रकृति से समुत्पन्न समस्त पदार्थों में सुख, दुःख और मोहात्मक पदार्थों में घृणा दृष्टि समुत्पन्न हो जाती है। उससे मायामय पदार्थों को परित्याग करके केवल आनन्द मात्र को प्राप्त करने के लिये यत्न सम्प्रदान योग के कारण करते हैं। तत्त्वज्ञान के द्वारा बुद्धिधर्मात्मक आनन्दमात्र में घृणादृष्टि होने से तत्त्वज्ञान का भी परित्याग करके नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त स्वभाव वाले स्वात्मा के प्रति चित्त के प्रवाह अस्मितायोगात्मक होता है तब क्लेश से युक्त माया के द्वारा समुत्पन्न बुद्ध्यादि पदार्थों का अवलम्बन के द्वारा आहित चित्त का चेतन स्वरूप आकार मात्र विशद प्रज्ञालोक होता है, यह ही स्वात्मविषयक प्रसाद है।

18.3 सारांश

भारतीय ज्ञान परम्परा में योग अत्यन्त व्यावहारिक एवं प्रसिद्ध है। योग को सूत्ररूप में निबद्ध कर मौलिक एवं विस्तृत रूप देने वाले महर्षि पतञ्जलि ने शास्त्र का प्रारम्भ युक्तियुक्तपूर्वक पारम्परिक दृष्टिकोण से ही किया है। योग का अभ्यास करते–करते जिस साधक की रजस, तमस वृत्तियाँ क्षीण हो चुकी हैं ऐसे स्वच्छ, निर्मल, निर्दोष, मणि सदृश चित्त का ग्रहीता, ग्रहण और ग्राह्य के स्वरूप में स्थिर उसी के रूप का अवलंबन करता है। जिसके बाद शब्द, अर्थ, ज्ञान तीनों पृथक् – पृथक् सत्ता वाले सवितर्क समापत्ति की अवस्था में भी तीनों की मिली जुली प्रतीति होती है । समापत्ति को चार अवस्थाओं में विभक्त किया है। वस्तुतः यह समाधि की सबसे निम्नतम अवस्था है ।

18.4 शब्दावली

योग	–	प्राचीन साधना पद्धति
अनुशासन	–	नियमयुक्त आचरण
चित्त	–	मन, बुद्धि और अहंकार
वृत्ति	–	चित्त के व्यापार
विवेक ख्याति	–	प्रकृति पुरुष का विवेच्य ज्ञान
चित्त	–	बुद्धि, अहंकार एवं मन का समाहार रूप
चित्तवृत्ति	–	चित्त का व्यापार (चित्त द्वारा गृहीत किये गये विषयों का ज्ञान)
दर्शन	–	त्रिविध दुःखों के अत्यन्त नाश हेतु पथ प्रदर्शित कराने
दुःख	–	इच्छा के विपरीत विषय का अनुभव
दुःखनिवृत्ति	–	दुःख के हेतुओं का नाश
पुरुषार्थ	–	धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष

मोक्ष – मृत्युलोक के आवागमन से मुक्ति, परमात्मा का सानिध्य, परमपद की प्राप्ति, परमानन्द का अनुभव

गृहीता – पुरुष

ग्रहण – अंतःकरण / इंद्रिया

ग्राह्य – पञ्च महाभूत/सांसारिक एवं आध्यात्मिक विषय वस्तु

समापति – एकीकरण / एकात्म / समाधि आदि ।

तत्र – वहां, पूर्व सूत्रलक्षित

संकीर्णा – मिश्रित

शुद्धौ – शुद्ध हो जाना

एतयैव – इससे ही

18.5 बोध / अभ्यास प्रश्न

1. समापत्ति के कितने प्रकार है?
2. समापत्ति का पर्यायवाची क्या है?
3. सविचार समापत्ति में ध्यान का आधार क्या है?
4. निर्विचार–समापत्ति की सिद्धि होने पर क्या प्राप्त होता है?
5. जब समाधि में शब्द अर्थ और ज्ञान का कोई विकल्प नहीं रहता तब उसे क्या कहेगे?
6. अध्यात्म प्रसाद क्या है ?
7. ग्रहीता, ग्रहण और ग्राह्या क्या है ?

18.6 संदर्भ ग्रंथ

पातंजल योगसूत्र, व्याख्याकार, श्रीनन्दलाल दशोरा, हरिद्वार रणधीर प्रकाशन १९९७ ।

योगदर्शन, प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या (व्याख्याकार, स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी, मुम्बई, श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट।

योगदर्शन, व्याख्याकार, पं. राजाराम प्रोफेसर लाहौर साहित्य प्रचारक मण्डल, १९२२।

पातञ्जलयोगदर्शनम्, व्याख्याकार डॉ सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, वाराणसी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन।

पातञ्जल योगदर्शनम्, व्याख्याकार श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य, श्री स्वामी विज्ञानाश्रम अजमेर, दी फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस १९३२ ।

योगतत्त्वांक, कल्याण विशेषांक, गीताप्रेस गोरखपुर, वर्ष १९९९ ।

पातञ्जल योगसूत्र) बंगाली बाबा व्याख्या हिन्दी अनुवादक कुमारी वृजरानी देवी, पूना एन. आर. भार्गव, १९४८ ।

योगदर्शन समीक्षा लेखक पं श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, वाराणसी, कृष्णदास अकादमी, १९९७

भारतीय दर्शन के मूल तत्त्व, लेखक – एम.हिरियन्ना, अनुप्रकाश नारायण शर्मा, सेन्ट्रल

बुक डिपो, १९५४

भारतीय दर्शन की रुपरेखा, लेखक प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, १९७४

भारतीय दर्शन, लेखक आचार्य बलदेव उपाध्याय, वाराणसी, चौखम्भा ओरियन्टालिया १९७६।

भारतीय दर्शन, लेखक – वाचस्पति गैरोला, इलाहाबाद लोकभारती प्रकाशन २००९।

भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन, लेखक – चन्द्रधर शर्मा दिल्ली मोतीलाल बनारसीदास, २०१०।

वेदान्तसार, (बदरीनाथ शुक्ल विरचित हिन्दी व्याख्या एवं रामतीर्थयति विरचित विद्वन्मनोरञ्जनी टीका सहित) सदानन्द. सम्प. बदरीनाथ शुक्ल. वाराणसी मोतीलाल बनारसीदास, १९७९.

सर्वसिद्धान्तसंग्रह, शकराचार्य. सम्प. सूर्यनारायण शुक्ल. वाराणसी काशी विश्वनाथ प्रेस,

सर्वदर्शनसंग्रह, (अभ्यकरवासुदेव शास्त्रि द्वारा दर्शनाकुर व्याख्या सहित) सम्प. वासुदेव शास्त्री अभ्यकर. प्राच्यविद्यासंशोधनमन्दिर, (निर्णयसागर) १९२४.

सांख्यतत्त्वकौमुदी, (गजाननशास्त्री मुसलगांवकर विरचित हिन्दी व्याख्या सहित) वाचस्पति मिश्र. वाराणसी चौखम्भा संस्कृत संस्थान, १९९२.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY